प्रथम अध्याय

रागाङ्ग राग-वर्गीकरण से अभिप्राय

1.1 वर्गीकरण का अर्थ

1.1.1 वर्गीकरण की आवश्यकता

1.2 राग का अर्थ व परिभाषा

1.2.1 राग का अर्थ

1.2.2 राग का उद्‌भव एवं विकास

1.2.3 राग की परिभाषा

1.3 रागाङ्ग से अभिप्राय

प्रथम अध्याय

रागाङ्ग राग-वर्गीकरण से अभिप्राय

भारतीय संगीत 'राग' प्रधान है। जब से 'राग' अपने अस्तित्व में आए तभी से वर्गीकरण की परम्परा चली आ रही है। इसके प्रमाण हमें ग्रन्थों में मिलते हैं। उत्तर भारतीय संगीत का प्रथम ग्रन्थ भरतकृत नाट्यशास्त्र माना जाता है। यद्यपि यह ग्रन्थ पूर्ण रूप से संगीत पर आधारित नहीं है, तथापि जिन अध्यायों में संगीत की चर्चा की गई है वहां कहीं तालों का वर्गीकरण, कहीं जाति गायन के भेद तथा कहीं वाद्यों का वर्गीकरण इत्यादि देखने को मिलता है। यथा- आचार्य भरत ने अपने समय में प्रचलित सांगीतिक वाद्यों का विभाजन चार भागों में किया- तत् वाद्य, अवनध वाद्य, घन वाद्य तथा सुषिर वाद्य आदि।[1] अत: केवल राग के क्षेत्र में ही नहीं अपितु अन्य सांगीतिक विषय-वस्तुओं के स्पष्टीकरण हेतु वर्गीकरण की आवश्यकता पड़ती रही है।

'राग' का स्पष्ट वर्णन सर्वप्रथम मतङ्ग कृत 'बृहद्देशी' में प्राप्त होता है। आचार्य मतङ्ग ने अपने समय में प्रचलित रागों का वर्गीकरण दो भागों में किया - ग्रामराग वर्गीकरण तथा देशी राग वर्गीकरण। 'मतङ्ग ' के परवर्ती ग्रन्थकारों ने इस परम्परा को जीवंत रखा। आज भी रागों के बढ़ते हुए विकास को सुनियोजित रूप प्रदान करने के लिए राग-वर्गीकरण किया जाता है।

प्रस्तुत अध्याय के इस भाग में वर्गीकरण का अर्थ व संगीत में राग-वर्गीकरण की आवश्यकता को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा।

1.1 वर्गीकरण का अर्थ

भारतीय शास्त्रीय संगीत में वर्गीकरण को एक विशेष स्थान दिया गया है। संगीत के प्रत्येक क्षेत्र में विद्वानों ने वर्गीकरण के द्वारा संगीत के विभिन्न सिद्धान्त व पहलुओं को सर्वसुलभ बनाने का प्रयास किया है।

---

1 नाट्यशास्त्र, अ० 28/1-2, पृ० सं० 1

वर्गीकरण शब्द में वर्ग के अर्थ हैं- श्रेणी, प्रभाग, दल, समूह, वर्गीकरण, जाति, संग्रह (समान वस्तुओं का) आदि[2], तथा वर्गीकरण से तात्पर्य हैं- वर्गों में बांटना। बृहत हिन्दी कोष में वर्ग एवं वर्गीकरण को इस प्रकार बताया है- स्वजातीय या समान धर्मियों के समूह या दल को वर्ग कहते हैं, तथा वर्ग के अनुसार वस्तुओं का विभाजन करना वर्गीकरण कहलाता है। इस प्रकार वर्ग से वर्गीकरण बना है, जिसका अर्थ एक ही प्रकार के गुण, धर्म, जाति या विशेषता वाले पदार्थों का एक साथ या समुदाय के साथ एकत्रित होना है।[3] इसी प्रकार कुछ सिद्धान्तों, उद्देश्यों, धारणाओं अथवा सुविधाओं के अनुसार वर्गों की क्रमबद्ध व्यवस्था को वर्गीकरण कहा जाता है।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि जब हम वस्तुओं का मूल्यांकन उसके गुण, धर्म, जाति, लक्षण आदि विशेषताओं के आधार पर या समानता, असमानता के आधार से कर, सुविधा के साथ निश्चित उद्देश्य को ध्यान में रखकर वर्ग बनाते हैं, तो वह वर्गीकरण कहलाता है।

प्राचीनकाल से ही जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वर्गीकरण किया गया है। वर्ग के आधार पर मनुष्य जाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इस प्रकार का वर्गीकरण देखने को मिलता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में वर्गीकरण की आवश्यकता पड़ती है। जिसके फलस्वरूप कम से कम समय में अधिक कार्य करने व वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विषय-विशेष के अध्ययन में सहायता मिलती है।

शोधकर्त्री का प्रस्तुत शोध-विषय संगीत व संगीत में राग से संबंधित है। अत: इस अध्याय में राग वर्गीकरण की चर्चा की जाएगी। संगीत में रागों के विकास क्रम को सुचारू रूप प्रदान करने के लिए समय-समय पर विद्वानों ने राग- वर्गीकरण के महत्त्व को जाना तथा अपने-अपने मतानुसार तत्कालीन रागों का वर्गीकरण किया। जैसे- जाति गायन, ग्रामराग वर्गीकरण, दशविध राग वर्गीकरण, राग-रागिनी, शुद्ध, छायालग व संकीर्ण राग,

---

2 . बृहत हिन्दी पर्यायवाची शब्द-कोष, पृ० सं० 239

3 हिन्दी बृहत कोष - पृ० सं० 382

मेल राग, थाट राग व रागांग राग वर्गीकरण आदि विविध वर्गीकरण समय-समय पर प्रचलित रहे हैं।

1.1.1 वर्गीकरण की आवश्यकता

वर्गीकरण की प्रक्रिया मानव की स्वभाविक मांग रही है। इसीलिए प्राचीनकाल से लेकर आज तक वर्गीकरण की अनेकों पद्धतियों का जन्म व विकास हुआ है। भारतीय संगीत राग प्रधान है। राग का तात्पर्य उन स्वर समूहों से है, जो नियोजित रूप में गाये-बजाये जाते हैं। अध्ययन व व्यवहार की सरलता के लिए रागों का वर्गीकरण किया जाता है। भारतीय संगीत में कालक्रम में होने वाले नवीन प्रयोगों से संगीत के तत्त्सम (मूल) रूप और सांगीतिक अभिव्यक्ति की शैलियों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होते रहे हैं। इन्हीं परिवर्तनोपरांत हुए विकास को अध्ययन की सुविधा, ज्ञान वृद्धि तथा विस्तृत विषय को सुचारू रूप से बोधगम्य बनाने के लिए वर्गीकरण आवश्यक माना गया है।[4]

रागों के इतिहास का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इतिहास के विभिन्न युगों में रागों का स्वरूप एक जैसा नहीं मिलता। रागों का क्रम लोकवृति के अनुसार बदलता रहा है। किसी युग में रागों का एक क्रम प्रचलित रहा तो दूसरे युग में दूसरा क्रम प्रचलित हो गया। यथा- आचार्य भरत के समय में 'जाति गान' प्रचार में था। तथा मतंग मुनि के समय तक आते-आते ग्रामराग व देशी राग प्रचार में आए। जैसे-जैसे रागों का विकास हुआ, भिन्न-भिन्न कालों में विभिन्न प्रकार की राग वर्गीकरण प्रणालियाँ सामने आईं।

इस प्रकार क्रम बदलते रहने से वर्गीकरण पद्धतियाँ भी बदलती रहीं। यद्यपि संगीत शास्त्र में कहा है कि रागों की संख्या परिमित नहीं है। तथापि शास्त्रकारों ने अपने समय में उपलब्ध रागों का वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है। राग- वर्गीकरण के लिए कभी ग्रामराग वर्गीकरण, कभी भाव के आधार पर राग-रागिनी, कभी मेल पद्धति व कभी भेद पद्धति द्वारा रागों को वर्गीकृत किया गया।

---

4 संगीत, जुलाई 1987 - राग वर्गीकरण का इतिहास - संतोष साद।

तात्पर्य यह है कि इतिहास के विभिन्न युगों में राग- वर्गीकरण पद्धतियेां ने अनेक करवटें लीं। इस का मूल कारण युगानुसार रागों का नवीन रूप ग्रहण करते रहना है। रागों के इसी विकासक्रम को क्रमबद्ध व निश्चित रूप देने के लिए वर्गीकरण की परम आवश्यकता होती है। जैसे-जैसे रागों का विकास होगा, वर्गीकरण प्रणालियों में भी सुविधानुसार परिवर्तन आते रहेंगे और नए रागों का निर्माण होने के कारण वर्गीकरण की नवीन प्रणालियों की रचना होती रहेगी।

1.2 राग का अर्थ व परिभाषा

प्रस्तुत शोधकार्य का मुख्य विषय रागाङ्ग राग-वर्गीकरण की चर्चा करना है। 'रागाङ्ग' में राग का अंग विशेष रूप से पाया जाता है। इसीलिए रागाङ्ग के विषय में कुछ कहने से पूर्व 'राग' पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। राग का अर्थ क्या है ? इसका उद्भव व विकास कब हुआ ? इन सब विषयों पर संक्षिप्त चर्चा की जाएगी। तत्पश्चात् 'रागाङ्ग ' पर चर्चा की जाएगी।

1.2.1 राग का अर्थः- 'राग' भारतीय संगीत की अनुपम परिकल्पना है, जो भारतीय संगीतज्ञों की सुविकसित व परिष्कृत सूक्ष्म सौंदर्य चेतना का प्रतीक है। सम्पूर्ण शास्त्रीय संगीत 'राग' की कल्पना पर आधारित है और 'राग' भारतीय संगीत की प्रमुख और श्रेष्ठतम कृति है। वह अपने अंतर में समस्त सौंदर्यात्मक शास्त्रीय तत्त्वों को समेटे हुए है।

'राग' शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है। शब्दकोष में 'राग' शब्द के अनेक अर्थ देखने में आते हैं। यथा- प्रीति, प्रेम, ईर्ष्या, रंग विशेष, लाल रंग आदि।[5] किन्तु संगीत के क्षेत्र में यह 'राग' शब्द रंजकता से सम्बद्ध है- रञ्जयति इति रागाः। अर्थात् जो रंजन करे वह राग है। उस ध्वनि विशेष के वाचक 'राग' शब्द का उद्गम 'रञ्ज' धातु से माना गया है जिसका अर्थ रंगना है। संगीत में रंजक उसे कहते हैं जो सुख और आनंद प्रदान करने वाला हो और इस अर्थ में रंगने का अर्थ सन्निहित है ही। संगीत में उस 'स्वर-समूह' को 'राग' कह

---

5 भाषा-शब्द-कोष, पृ० सं० 1318

सकते हैं, जिसमें रंग देने की शक्ति हो या दूसरे शब्दों में जिसका एक सविशेष व्यक्तित्व हो। डा० प्रेमलता शर्मा के शब्दों में- ''रूप या आकार के साथ 'रंग' का अविच्छेद संबंध है। रूप अग्नि का गुण है, अतएव अनल और अनिल के योग से उत्पन्न नाद में स्वभाविक रूप 'राग' या रंजकता या रंगने की शक्ति निहित है। इस प्रकार 'राग' सविशेष है, क्योंकि उसका एक निजि भावमय रंग है, जो उसे दूसरों से पृथक करता है। निर्विशेष में 'राग' या 'रंग' का प्रश्न ही नहीं होता।''[6]

1.2.2 राग का उद्भव एवं विकास:- 'राग' किस समय प्रचलन में आए इस बात को निश्चित रूप से कहना कठिन है। परन्तु ऐसा माना जाता है कि राग से पूर्व, राग के ही समकक्ष जाति गायन प्रचलित था। जिसमें राग के समान दस लक्षणों का प्रयोग किया जाता था। जाति की परिभाषा भी वही थी जो आज 'राग' के लिए कही जाती है। आचार्य मतङ्ग के अनुसार, ''सकलस्य रागादेर्जन्महेतुत्वाज्जातय इति''।[7] अर्थात् जाति ही राग की जननी है। भरत मुनि के अनुसार, ''जातिसम्भूतत्वाद ग्रामरागाणाम्'' इति, ''यत्किञ्चद गीयते लोके तत्सर्व जातिषु स्थितम्'' इति वचनात्।[8] अर्थात् लोक में जो भी गाया जाता है, जातियों में स्थित है।

'राग' शब्द का पारिभाषिक रूप सर्वप्रथम मतङ्ग मुनि कृत 'बृहद्देशी' में प्राप्त होता है। आचार्य मतङ्ग से पूर्व आचार्य भरत ने 'नाट्यशास्त्र' में ग्रामरागों का उल्लेख किया है किन्तु स्पष्ट रूप से 'राग' की चर्चा नहीं की। मतङ्ग मुनि के वक्तव्य के अनुसार, ''रागमार्गस्य यद्रूपं यन्नोक्तं भरतादिभि:। निरूप्यते तदस्माभिर्लक्ष्यलक्षणसंयुतम्''।[9] अर्थात् राग के जिन लक्षणों (रूप) को आचार्य भरत ने निरूपित नहीं किया है, उसका निरूपण मैं करने जा रहा हूँ।

---

6 संगीत, मार्च 1971, डा० प्रेमलता शर्मा

7 बृहदेशी, अनुच्छेद-118, पृ० सं० 10

8 वही, अनुच्छेद-170, पृ० सं० 92

9 वही, श्लोक सं० 262, पृ० सं० 76

इसी प्रकार 'नारदीय शिक्षा' में भी रागों का उल्लेख ग्रामरागों के संदर्भ में हुआ है। यथा- ''स्वर राग विशेषण ग्रामराग इति स्मृता:।''[10] अर्थात् स्वरों की रजंकता के विशिष्ट होने पर ग्रामराग कहलाते हैं।

इस प्रकार पारिभाषिक रूप में प्रचार में आने से पूर्व 'राग' का उल्लेख ग्रामरागों के रूप में कई ग्रन्थों में हुआ है।

1.2.3 राग की परिभाषा:-

मतंग ने 'राग गीति' का वर्णन करते हुए कश्यप की परिभाषा को उद्धृत किया है और कहा है कि जो राग चार वर्णों (स्थाई, आरोही, अवरोही, संचारी) से शोभित होता है, चारों वर्ण जहाँ दिखाई देते हैं, वे राग कहे गए हैं-

''चतुर्णामपि वर्णानां योगा राग: -शोभना।
स सर्वो दृश्यते येन तेन रागा इति स्मृता॥''[11]

कश्यप की उपरोक्त परिभाषा के आधार पर मतंग ने 'राग' की परिभाषा विभिन्न रूप से दी है-

स्वरवर्णविशेषेण ध्वनिभेदेन वा पुन:।
रञ्जयते येन सच्चितं स राग: सम्मत: सताम्॥263॥[12]

अर्थात् विशेष स्वर, वर्ण या ध्वनि भेद के द्वारा जिसमें जन-चित्त-रंजन का सामर्थ्य हो, वह राग कहलाता है।

अथवा योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषित:।
रञ्जको जनचित्तानां स च राग उदाहृत: ॥264॥[13]

---

10 नारदीय शिक्षा, श्लोक सं० 7, पृ० सं० 16, द्वितीय कण्डिका।

11 बृहद्देशी, अनुच्छेद-190, पृ० सं० 109

12 वही, श्लोक सं० 263, पृ० सं० 76

अर्थात् षड्जादि स्वरों और स्थायी आदि वर्णों से विभूषित अथवा अलंकृत वह ध्वनि-विशेष जो श्रोताओं के चित्त का रंजन करे, वह राग है।

पं० शार्ङ्गदेव ने कश्यप के अनुसार ही राग की परिभाषा को स्वीकार किया है। यथा- 'चतुर्णामपि वर्णानां..... ' तथा योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु[14] ..... को स्वीकार किया है।

आचार्य पार्श्वदेव राग की परिभाषा देते हुए कहते हैं,

''स्वरवर्ण विशिष्टेन ध्वनिभेदेन वा पुनः।
रज्यते येन सच्चितं स राग सम्मतः सताम्॥''[15]

अर्थात् ऐसे विशिष्ट स्वर तथा वर्ण अथवा ध्वनिभेद जो सज्जनों के चित्त का रंजन करने में सक्षम हो, वही 'राग' है।

कुम्भा ने अपने ग्रन्थ 'संगीत राज' में रागोल्लासः के अन्तर्गत राग को इस प्रकार परिभाषित किया है-

योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः।
रञ्जको जनचित्तानां स राग कथितो बुधैः॥12॥[16]

अथवा स्वरवर्ण विशिष्टेन..... को स्वीकार किया है।[17]

अर्थात् वह विशेष ध्वनि, जो विचित्र वर्ण, अलंकारों, ग्रहादि स्वरों से युक्त तथा रजंक हो, उसे राग कहते हैं।

पं० सोमनाथ के अनुसार-

''स्वरवर्ण विभूषितो यो ध्वनिभेदो रञ्जकः स राग इह।
बहुविधसंख्याः प्राचां मतैरनैकैः प्रसिद्धा ये''॥1॥[18]

---

13 वही, श्लोक सं० 264, पृ० सं० 76

14 संगीत रत्नाकर, पृ० सं० 5

15 संगीत समयसार, पृ० सं० 19

16 संगीत राज - श्लोक सं० 12, पृ० सं० 266

17 वही - श्लोक सं० 11, पृ० सं० 266

18 राग विबोध, चतुर्थीविवेक, पृ० सं० 101

अर्थात् जो ध्वनि स्वर वर्ण से भूषित और रंजक हो वह 'राग' है।

इसके पश्चात् मध्यकाल में लगभग सभी ग्रन्थकारों यथा- पं० दामोदर, श्रीकंठ, पं० अहोबल आदि ग्रन्थकारों ने राग की परिभाषा के मूल अर्थ को मतंगोक्त परिभाषा के आधार पर ही रखते हुए, भिन्न-भिन्न शब्दों में प्रस्तुत किया है।

आधुनिक ग्रन्थकारों में पं० भातखण्डे ने राग की प्राचीन परिभाषा 'योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषित:। रञ्जको जनचित्तानां स राग कथितो बुधैः' को मानते हुए राग की परिभाषा दी है।[19] पं० ओंकारनाथ ठाकुर राग के विषय में कहते हैं- 'राग' शब्द का अर्थ है, ऐसा स्वर-समूह जो रंजक हो, यानि सुख, आनन्द देने वाला हो। इस रंजकता के अलावा 'राग' में और कुछ विशेषताएँ भी होती हैं। लोकगीत या अन्य धुनें भी रंजक तो होती हैं, किन्तु उन्हें हम राग नहीं कहते। क्योंकि राग एक शास्त्रीय रचना है। जिसमें रंजकता के साथ-साथ नियमों का बंधन भी रहता है।[20]

इस प्रकार प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल तक सभी ग्रन्थकारों की परिभाषाओं को दृष्टिगत करने से ज्ञात होता है कि सभी ग्रन्थकारों ने 'राग' की परिभाषा को लगभग समान रूप से स्वीकार किया है।

राग पर स्वतन्त्र रूप से कई शोधकार्य हुए हैं व उनमें इस विषय पर विस्तृत रूप से चर्चा भी हुई है। यहाँ शोधकर्त्री का ध्येय केवल रागांग के संदर्भ में 'राग' पर प्रकाश डालना रहा है। इस हेतु यहाँ 'राग' पर संक्षिप्त चर्चा की गई है।

1.3 रागाङ्ग से अभिप्राय:

प्रस्तुत अध्याय का मूल विषय रागाङ्ग राग-वर्गीकरण की चर्चा करना है। वर्गीकरण व राग से सम्बन्धित चर्चा इस अध्याय के पूर्व भाग में की गई है। इस भाग में 'रागाङ्ग ' पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जाएगा।

---

19 श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्, श्लोक सं० 496, पृ० सं० 170

20 संगीतांजलि-1, पृ० सं० 7

हिन्दुस्तानी संगीत में 'रागाङ्ग ' का प्रमुख स्थान है। 'रागाङ्ग ' संगीत का एक पारिभाषिक शब्द है, जो राग+अंग से मिलकर बना है। 'राग' से अभिप्राय उस विशिष्ट स्वर-समूह से है, जिसमें कुछ विशिष्ट नियमों का पालन हो एवं जन-मन-रंजन की क्षमता हो। अंग का अभिप्राय राग की मुख्य स्वरावली में प्रयुक्त होने वाली विशिष्ट स्वर संगति से है। श्री विमलकान्त राय चौधरी अंग के विषय में कहते हैं- इसका शब्दार्थ है- 'अवयव या भाग'। इसका अर्थ पूर्वांग अथवा उत्तरांग भी हो सकता है अथवा इसका अर्थ भिन्न राग की छाया भी हो सकती है।[21]

रागों की संख्या सीमित नहीं है फिर भी एक समय में 200-250 से अधिक राग प्रचलित नहीं रहते। इन्हीं रागों में से कुछ राग कालानुसार अपनी विशेषताओं के कारण प्रमुख बन जाते हैं। ऐसे राग स्वतन्त्र व मिश्रण रहित होते हैं। इन रागों का कोई खास स्वर-समूह या अंग जब अन्य रागों में दिखाई दे तो उस अंग विशेष को 'रागाङ्ग' की संज्ञा दी जाती है। अथवा इस प्रकार कहें कि प्रमुख रागों से लिए गए अंग या मुख्य स्वरावली जो अन्य रागों की रचना करने में समर्थ हों या सक्षम हों 'रागाङ्ग' कहलाता है। उदाहरणत: मूल राग का नाम है- मल्हार। जिन-जिन रागों में मल्हार का अंग या खास स्वरावली प्रयुक्त हो, उन उपरागों यथा- सूरमल्हार, गौड़ मल्हार, रामदासी मल्हार आदि मल्हार रागांग के अन्तर्गत आने वाले राग कहा जाएगा।

'रागाङ्ग' की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझने के लिए यह परिभाषा जानना उपयुक्त होगा- डा० कृष्णा बिष्ट के अनुसार, जिस प्रकार एक भाषा केवल व्याकरण का संग्रह मात्र नहीं होती, अपितु शब्दों, वाक्यों व मुहावरों आदि के प्रयोग द्वारा सही रूप प्राप्त करती है। उसी प्रकार 'राग' भी केवल स्वर सप्तक(स्केल) के द्वारा ही नहीं बल्कि राग के विशिष्ट गुण व व्यक्तित्व का दर्शन अंग के माध्यम से व्यक्त होता है(अनुवाद)।[22] भावार्थ यह है कि 'राग' केवल स्वरों का संग्रह मात्र नहीं है, अपितु उन स्वरों के नियमित तथा

---

21 राग व्याकरण, सांगीतिक शब्दकोष, पृ० सं० 1

22 जनरल ऑफ म्यूज़िक अकादमी मद्रास 1973 - सिग्नीफिकैन्स ऑफ रागांग, डा० कृष्णा बिष्ट।

समुचित प्रयोग के साथ-साथ विशिष्ट स्वर संगतियों और विशिष्ट चलन के द्वारा ही वह मौलिक सौंदर्य सम्पन्न बनता है।

राग की प्रकृति, स्वरूप व उसका सौंदर्य राग के विशिष्ट अंगों पर निर्भर करता है। राग की सामान्य पहचान स्वरों के द्वारा की जाती है किन्तु सूक्ष्म पहचान विशिष्ट स्वर-समुदायों के माध्यम से होती है। जो 'रागाङ्ग' कहलाती है। उदाहरणत: मनुष्य की सही पहचान हाथ, पाँव आदि अंगों के होते हुए भी 'मुख' से है, उसी प्रकार राग रूपी व्यक्तित्व के अनेक स्वर रूप अंगों के होते हुए भी कुछ स्वरों से बने स्वर-समूह विशिष्ट 'मुख' से राग को पहचाना जाता है। मनुष्याकृति तो दृश्य वस्तु है अत: आंखों से देखी जा सकती है। परन्तु 'राग'की स्वराकृति ज्ञातृसापेक्ष है, जिसका संबंध श्रवण क्रिया से है। अत: गुरू के मार्गदर्शन से ही सीखी जा सकती है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में एक ही प्रकार के अंगों का कई रागों में प्रयोग हो सकता है। यथा- 'ग म रे॒ रे॒ स', 'ग म ध॒ ध॒ प' स्वरों से भैरव के सभी प्रकारों की छवि सामने आ जाती है। पं० भातखण्डे के अनुसार, 'रागाङ्ग' में अंग ऐसा भाग है, जो रागों में अधिक स्पष्ट दिखाई देता है। किसी राग के आरोह में नियमित स्वर छोड़ना, किसी राग के आरोह या अवरोह के स्वर विशेष प्रकार के रखना, किसी राग की स्वर रचना विशिष्ट प्रकार की रखना आदि।[23]

प्रस्तुत शोधकार्य के प्रथम अध्याय 'रागाङ्ग राग-वर्गीकरण' से अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए क्रमानुसार सर्वप्रथम वर्गीकरण व इसकी आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है। इसी क्रम में आगे 'रागाङ्ग' के महत्व को दर्शाने के लिए राग की परिभाषा व अर्थ की व्याख्या की गई है। तत्पश्चात् 'रागाङ्ग' पर संक्षिप्त व प्रारम्भिक चर्चा की गई है। अगले अध्यायों में 'रागाङ्ग' के प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए विस्तृत चर्चा की जाएगी।

---

23 भातखण्डे संगीत शास्त्र-4, पृ० सं० 27